# भगवत् कृपा

# THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

| वर्ष-15, अंक-6<br>शुक्रवार, 26 जून' 92 | सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी<br>जून, 1992 | वार्षिक चन्दा-10.00<br>प्रति अंक : 1.00 |
|---|---|---|


## अमृतसेतु

[हम सब के प्यारे प्रभु प.पू. काकाजी का अमृत महोत्सव (75वीं जन्म जयंती) का महामंगलकारी वर्ष—'1993' आ रहा है.... सर्व गुणातीत स्वरूपों की छत्र-छाया में दिल्ली में 3rd. Feb. के दिन-वह अमृतपर्व मंदिर में मूर्तिप्रतिष्ठा के साथ-साथ मनायेंगे। हमारे भाग्य का तो पार नहीं कि रोम-रोम में भगवान प्रकटाये परम पवित्र पुरूष गरजू बनकर हमारे जीवन में आ गये....हमें अपनी गोद दी और उनके संग जीवन जीये !!...कैसे ऋण चुका भी पायेंगे इनका?

पू. काकाजी के निम्नलिखित दो आंशिक पत्रों से ही स्पष्ट होता है कि हमें कैसी भव्य प्राप्ति हुई है....और इनके संबंध में आने के बाद हमें क्या करना है? और इससे भी अधिक—कैसी कल्पना से परे की प्रीति होगी। हम सबसे उनकी? कितना अपना माना होगा हमें—जो ऐसा सचोट व स्पष्ट मार्गदर्शन हमारे लिए खुला रख दिया कि आज भी यदि करने लग जायें तो परम सुखी हो जायें व देह रहते हुए अक्षरधाम का सुख-शांति आनंद प्राप्त करें.....

आईये, हम सब मिलकर इस रहस्य का मनन चिंतन करके समझने का प्रयास करें। इन वाक्यों को अपने जीवन का आधार बना लें ताकि 'अमृत महोत्सव' तक में प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूपों हमारी सब कसर टाल कर हमारी साधना की पूर्णाहुति करा देवें....यही अंतर की आरजु.....]

❑ .....मुझे तो
पू.बापा ने अनुपम ही पसंदगी में चुना था,
सो,
सर्वांगी विकास में और सर्वोच्च ब्रह्मीस्थिति में
तकलीफें बाधारूप नहीं बनी
और
**मूल रहस्यों** गौण नहीं हुए–
अक्षरपुरुषोत्तम उपासना
व
जीव को ब्रह्मरूप करके परब्रह्म में जोड़ने के मूल उद्देश्य में सहज स्थिति व सिद्धि पू. बापा ने दे दी.....
जिससे
सभी भूमिकाओं में अखंड शांति और आनंद रहा....

❑ ❑ ❑

❑ * गुरु बहुत होते हैं,
परन्तु
* * सद्गुरु कम।
और
सच्चा सद्गुरु तो शायद ही मिले
और
मिल भी जाये तो–
उसके जोग में रहना कठिन।
यदि रहें भी, तो–
अखंड दिव्यभाव रखना कठिन।
वह भी रखें तो–
स्वभाव टाल कर टिकना कठिन।
वह भी कर लें तो–
उसकी अनुवृत्ति में रहना कठिन।
वह भी हो जाये, तो–
उसके अभिप्राय की भक्ति करनी कठिन।
और
वह भी हो, पर–
भिन्न-भिन्न प्रकार के–भिन्न रुचि वाले मुक्तों के साथ
**दिव्यभाव ही रखकर–साधुता रखकर**
सरलता वर्तना–सर्वोत्तम स्थिति है।
और तब–
पूर्णता ही प्रगटे
और
Final stage सिद्ध हुई मानी जाये।
तो,
यह **एकता व समता** दृढ़ करते जाना।
दूसरा क्या कर रहा है?
वह
जरा भी नज़र में नहीं लेना।
हमें
प्रभु को याद करके
उन्हें ही सब करने देना है।

**–प.पू. काकाजी महाराज**
शिकागो, 12-5-'-77

* शब्द द्वारा परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान का उपदेश करे वह गुरु।
** सभी में परमात्मा का दर्शन कराये वह सद्गुरु।

# आध्यात्मिक गुरुपूजन......गुरुपूर्णिमा

आईये ! आईये ! नित्य नवीन उमंग व उल्लास से, श्रद्धा व विश्वास रखकर, भक्ति के रंगों से सजकर सच्चे 'आध्यात्मिक गुरुपूजन' की तैयारियाँ करें.....क्योंकि—

जड़ता के अंधकार में से चैतन्य तत्त्व के प्रकाश में ले जाने वाले,

जीवन को सच्चे अर्थ में अमृतमय बनाने वाले,

प्रभुमय बनाने वाले

प्रभुस्वरूप सद्गुरु का अहोभाव से पूजन करने का दिन अर्थात् 'गुरुपूर्णिमा' का पवित्र पर्व नजदीक आ रहा है.....गुरुभक्ति अदा करने शिष्य गुरुपूजन करके आज के मंगलकारी दिन गुरुचरण में हार, फल, फूल, भेंट आदि रख कर दक्षिणा अर्पण करता है। परन्तु 'आध्यात्मिक गुरुपूजन' की परिभाषा इससे अलग है....अपने, मन, बुद्धि, चित्त, अहम्......स्वयं को total मिटाकर, देह, लोक, भोग, पक्ष को नहीं गिनकर सर्वस्व का समर्पण करके प्रथम स्थान अपने गुरु को देना व उसे 'हाश' कर देना—यही कहा जाता है **'सच्चा आध्यात्मिक गुरुपूजन.....'**

गुरु की महिमा और आवश्यकता सभी सम्प्रदायों और सभी देशों ने स्वीकार की है, परन्तु गुरु की यथार्थ महिमा समझकर 'गुरु बिना गत नाही' की लोकोक्ति को सार्थक करने का श्रेय भारतीय संस्कृति को जाता है। क्योंकि—युगपुरुषों ने अपने अवतरण के लिए भारत की भूमि को पसंद किया और इन धार्मिक संस्कारों के कारण ही आज भी पूरे विश्व में 'भारत' को एक पवित्र व निराली दृष्टि से निहारा जाता है। भारत की पहचान ही 'आध्यात्मिक भूमि' के नाम से होती है....धन्य-धन्य है भारत की वसुंधरा को.......

गुरु की जीवन में आवश्यकता पर यदि खूब गहराई से विचार किया जाये, तो हम स्वयं अनुभव करेंगे कि अपनी ताकत से लाख साधन करने पर भी अपने जड़ स्वभाव-प्रकृति किसी भी कीमत पर टल नहीं सकते व प्रारब्ध हट नहीं सकते। प्रारब्ध व प्रकृति ने आज हरेक को जकड़ रखा है। साधन करते रहने से ऊपर-ऊपर से शायद हमें कभी टले हुए भी दिखाई पड़े, परन्तु उनके सूक्ष्म बीज कभी-न-कभी, किसी-न-किसी रूप में पनपकर अवश्य हमें हमारे मार्ग से डिगा ही देते हैं....

इतिहास साक्षी है कि राजा जड़भरत अपना समस्त राजपाट-सुख-समृद्धि का त्याग करके जंगल में साधना करने चले गए थे। उनकी वैराग्यवृत्ति अजोड़ थी, परन्तु अपनी एक दया की वृत्ति के कारण उन्होंने एक हिरण के बच्चे को चोट लगने पर खूब मन पिरो कर उसकी सेवा-सुश्रुषा की। यहां तक कि जिस ध्येय को लेकर वे सब छोड़कर निकले थे वह गौण हो गया और मृगशावक की सुश्रुषा प्रमुख बन गई। आखिर मृत्यु के समय उन्हें प्रभु की स्मृति होने के बजाय उस मृग शावक की चिंता रही कि उस बेचार हिरण का कौन ख्याल रखेगा? उस हिरण का क्या होगा? और.....अंतिम समय पर यही स्मृति रहने के कारण उन्हें मृग का जन्म लेना पड़ा !!

यह प्रसंग सुनकर गुरुहरि योगीजी महाराज को एक बार एक भक्त ने प्रश्न पूछा कि बापा ! भरतजी को तो कितना अधिक वैराग्य? प्रभु पाने के लिए राजपाट—सभी सुख ऐश्वर्यो का त्याग कर दिया। जबकि हम सबने तो कुछ छोड़ा भी नहीं है। न ही प्रभु पाने की ऐसी कोई लगन भी है। संसार की मोह-माया में भी खूब लिप्त हैं; फिर हमारा तो क्या होगा? बापा यानि—भगवान स्वामिनारायण को रोमरोम में प्रगटायी हुई सहजानंदी अलमस्त मूर्ति....परभाव की अलौकिक भूमिका में एकदम सहज जवाब दिया : **जो तुम्हें मिला है, वह भरतजी को नहीं मिला था।** अर्थात् यदि भरतजी को भी मार्गदर्शन करता—चोट लगाकर भी कहता कि—दया की यह वृत्ति के कारण तुम तुम्हारे रास्ते से भटक रहे हो और तब भी यदि नहीं समझता तो—अपनी संकल्प शक्ति से कोई ऐसा प्रसंग खड़ा करके या रोग प्रेरकर भी वृत्ति के अधीन उस प्रवृत्ति को रोक लेते ! इस प्रसंग से हमें स्पष्ट होता है कि प्रगट गुरु के बिना कोई भी वृत्ति हम पर हावी होकर प्रभु से संबंध तुड़वा सकती है.....जन्म-मरण के चक्कर में फंसा सकती है। प्रेम, दया, दान, क्षमा तप, त्याग, गुण-वैराग्य आदि भी यदि गुरुमुखी रहकर गुरु आज्ञा से नहीं किये जायें, तो वह शिष्य के लिए बाधारूप-बंधनरूप ही है। प.पू. काकाजी के शब्दों में **मनमानी भक्ति, सेवा भी एक वृत्ति है जो आपका अहम बढ़ायेगी**......जीवन में सच्चे समर्थ गुरु के सिवा करोड़ों जन्मों से चेतना पर पड़े अहंता-ममता के धब्बे और कौन धो सकता है?

और—सच्चा सद्गुरु एकमात्र गुरु गुणातीत है...गुरु गुणातीत अर्थात्....

1. * जो सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से पर अखंड निर्गुणभाव में रहता है।
2. * जो संसार रूपी माया में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहता है।
3. * जिसका पूजन करने से साक्षात् प्रभु को, वह पूजन पहुँचता है।
4. * जिसके द्वारा चैतन्य का विकास होता है।
5. * जिसके द्वारा आत्मा की भूख की तृप्ति होती है।
6. * जो कई जन्मों से जीव के उल्टे पड़े हुए कमल सीधे करता है और जीव को प्रभु सम्मुख करता है।
7. * जो जीवन में सच्चे सुख, शान्ति, आनन्द का अनुभव कराता है।
8. * जो चौरासी योनि के फेरों व जन्म-मरण के रोग से मुक्ति दिलाकर इस भवसागर से हमारी नाव पार कराता है।
9. * जो हमारे प्रारब्ध व प्रकृति को बदलता है।
10. * जो हरेक संजोगों में, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था में केवल हमारा मंगल-हित ही चाहता है।
11. * जो काल, कर्म, माया से हमारी रक्षा करता है।
12. * जो अपने शिष्य के जीवन में ज्ञान, कर्मयोग व भक्ति का समन्वय करता है।
13. * जो करोड़ों जन्मों की जड़ता, हठ, मान, ईर्ष्या, लोभ, मोह, मद, मत्सर, काम, क्रोध, आशा, तृष्णा, सूक्ष्म भावों आदि स्वभावों का दर्शन कराके शुद्धिकरण करता है व शिष्य के हृदय को साफ-सुथरा करके प्रभु की मूर्ति को स्थापित करता है।
14. * जो अपने शिष्यों को अपने से भी सवाया बनाने की चाहना रखता है।

हम सबको प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी, प.पू. अक्षरविहारी स्वामिजी, प.पू. साहेब के रूप में गुणातीत परम्परा के वारिसदार मिले ही है। उपर लिखी सभी विशेषताओं का हमने इन गुणातीत स्वरुपों में दर्शन किया है, अनुभव भी किया है। इस बारे में तो हममें से कोई भी ना नहीं कह पाएगा।

हम खूब सत्संग करते हैं.... प्राप्ति भी खूब अद्भुत हुई है। पाना तो कुछ बाकी ही नहीं रहा। अवतारों के अवतारी अक्षरधाम के ही साक्षात् स्वरूप मिले हैं। परन्तु जीव में इस दृढ़ प्रतीति के साथ-साथ 'अहम्' और भी 'मैं' भी है। बालक ध्रुव की तरह समर्पण नहीं है। कबीर की मुन्नी, जैसी सरलता नहीं है, मीराबाई जैसी भक्ति नही है, हनुमानजी जैसा सेवकभाव नहीं है....प्रह्लादजी जैसी निष्ठा नहीं है। जहां गुरु के पास कोरा कागज बनकर रहना है ताकि वह जो चाहे, उस कागज पर लिख सके, उसके बजाय अपने मन, बुद्धि के जाल से हमारी चित्तपट्टी की स्लेट पूरी भरी ही है। इसलिए ही हमारी प्रगति जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं हो पाती। सो ही गुरु द्वारा मौज में ही दिए सुख को हम भोग नहीं पाते।

तो अब 'गुरुपूर्णिमा' पर सही अर्थ में शिष्य बनकर अनुपम भेंट गुरुचरणों में रखकर गुरुपूजन करें.....चरणों में शीशनामी यानि-'बुद्धि' गुरुचरण में सौंपकर दीनता उच्चारण करें—हे प्रभु ! आप जैसा कहो, वैसा ही करना है। आपके पास **व आपके संबंध वालों के पास** मैं शून्य हूं और शून्य ही बनकर रहूं। मेरे 'स्व' को आपके चरणों में समर्पित कर दूँ। मुझे समग्र गुणातीत समाज का आत्मीय बनाना। मुझे मुनमुखी वर्तने, सद्गुरुपन, व दूसरों के दोष ही देखने की जो आदत बन गई है—वह आप छुड़वाना। मैं मन, कर्म, वचन से आपके पास दो हाथ जोड़कर आपकी ओर निगाह रखकर जीऊं, ऐसा आप मुझे संभालना।

एक बात तो पक्की है—
गुरु के पास जितनी सरलता रखेंगे,
उनके गुणों को जीव में जितना बसाएंगे,
प्रसंग पर जितना उनका वर्तन निहारेंगे,
जितना उनकी आज्ञा में रहकर शुद्धभाव से वर्तेंगे,
जितना उनके साथ निष्कपट संबंध रखेंगे—

उतने हम उनकी दृष्टि में आ जायेंगे और गुरु की वह दृष्टि हमारे भीतर में प्रकाश-प्रकाश करके, अंतर की सारी गंदगी निकालकर प्रभु की मूर्ति स्थापित कर देगी।

❑❑❑

ब्रह्मप्रवाह

# सर्वोत्कृष्ट स्थान और साक्षात्कार की स्थिति

**गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।**
**गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥**

अनंत जन्मों के सुकृत उदय हों, तब भगवान या उनसे मिले संत का समागम और प्राप्ति होती है। जीवात्मा अनादिकाल से जो भावना, प्रणालिका, आदर्श और वासना एवं ग्रन्थियों से बंधा हुई है, उसकी तीव्र, मध्यम और मंद गति की श्रद्धा व विश्वास की वृत्ति से भगवान का स्वरूप, धाम और महिमा समझ में आती है, प्राप्त होती है और ऐसी ही स्थिति उस स्थान में रहकर अखंड रहती है।

मुमुक्षु जब गुरुहरि को प्रथम मिलता है तब देश काल, संग, मंत्र व शास्त्र की भावना-प्रतीति-दीक्षा जैसी–शुभ या अशुभ वर्तती हो, वैसी उसकी श्रद्धा बनती है और उसी के मुताबिक ही भगवान के स्वरूप का व मूर्ति का निश्चय एवं आसरा होता है और वैसी ही स्थिति बंधती है। अनंत भूमिकायें व स्थान हैं जहां जीवात्मा वासना या पंचविषय के कारण व ऐश्वर्य, सत्ता, समार्थ्य को पाने घूमता रहता है व उस सुख को भोगता है। जब साक्षात् भगवान का स्वरूप प्राप्त होता है तब ही आत्यंतिक मुक्ति और साक्षात्कार की स्थिति की अनुभूति होती है। जीवनमुक्त दशा-स्थितप्रज्ञता प्राप्त होती है। स्वामिश्रीजी भीतर में और बाहर अखंड एकत्वभाव से दिखाई पड़ते हैं। अहो अहो भाव रहकर दिव्य स्वरूप का अखंड आनंद भोग पाते हैं। अनेक स्थानों की अपेक्षा महाराज ने गोलोक, बैकुण्ठ, बद्रिकाश्रम, श्वेतद्वीप और ब्रह्मपुर को मुख्य गिने है। अनंत भूमिकाओं में से गुजर कर जीवात्मा प्रकृति पुरुष तक तो पहुँच पाती है। परन्तु माया से परे साक्षात्-सनातन-अद्वितीय-अजोड़ अक्षरब्रह्म जो धामरूप सर्वोत्कृष्ट अजोड़ स्थान है, वहां मूल अनादि ब्रह्म के मनन द्वारा संग के बिना-साक्षात् ब्रह्म में प्रवेश पाये बिना–जीवात्मा शीवरूप नहीं होती–गति नहीं कर पाती और परमशिव स्वरूप में पूर्ण पुरुषोत्तम के साधर्म्य को भी पाती नहीं। सो, साक्षात्कार की स्थिति नहीं होती। वच. लोया–12, प्र. 24, मध्य-9,3,11 के मुताबिक अति उत्तम निर्विकल्प निश्चय करके धामरूप रहते हुए महाराज की उपासना और भक्ति, करने का अधिकारी नहीं बनता। इस हेतु साक्षात् मूलब्रह्म का या महाराज के प्रत्यक्ष स्वरूप के ज्ञान की आवश्यकता रहती है। प्रगट गुरुहरि में निर्दोषभाव से अंतराय रखे बिना जितनी अनन्य निष्ठा करी होगी उतना ही प्रकाश, सत्ता व सामर्थ्ययुक्त साक्षात्कार की स्थिति का अनुभव होता है, भोगी जाती है और अखंड प्राप्त होती है।

वच लोया-7 के मुताबिक प्रत्यक्ष भगवान या उनके स्वरूप को इन्द्रियां–अंतःकरण और तदाश्रित अनुभव साक्षात् पहुंचे नहीं तो कल्याण में-मुक्तावस्था में कसर रह जाती है। श्रीजी ने मुक्तों के अनंतकोटि भेद बताए हैं। प्रेमी, विश्वासी या साधारण ज्ञान वाले भक्तों को ज्ञान की कसर रह जाती है। परन्तु ज्ञान-प्रीति और दासभाव की दृढ़ता साक्षात् गुरुचरण में रह कर ही होती है और वह आसरा पक्का हुआ माना जाता है। तब जाकर देह रहते हुए ही आत्यंतिक मुक्ति का अनुभव होता है। ऐसे सर्वोत्कृष्ट स्थान को अक्षरधाम कहा जाता है। मूलअक्षर ब्रह्म के साधर्म्य को पाए बिना ऐसी स्थिति होती ही नहीं। महोल रूप, अक्षररूप, ब्रह्मरूप हो ही नहीं पाते। इस सत्य को अक्षरपुरुषोत्तम के उपासक अच्छी तरह जानते हैं। सत्पुरुष और भगवान का साक्षात् स्वरूप मिलने पर भी कसर क्यों रह जाती है? कल्पना क्यों रहती है? स्वरूपनिष्ठा में–भगवान के ही साक्षात् स्वरूप के बारे शंका-अशंका करके कुरेदना क्यों होता है? क्योंकि परोक्ष जैसी प्रत्यक्ष में प्रतीति नहीं है। श्रीजी

के ही कहे वचनामृत-परावाणीरूप देखो; वच. पंचाला 1,7,4, अंत्य. 2, बङ, 11, अमदाबाद-7 वगैरे।

ज्ञान की दृढ़ता के लिए ही मुक्तों देह धरते हैं। उनमें जो गुरुचरण में रहता है वह इक्यावन स्थान सहज ही जीत जाता है। परन्तु, मूल प्रकृति-पुरुष भेद जो कि माया के प्रपंच युक्त हैं, उसे साधन दशावाला गुरु चाहे वह कितना ही बड़ा माना जाता हो, परन्तु उसे पार नहीं करा सकता। क्योंकि मूल अनादि सनातन ब्रह्म-गुणातीत स्वरूप के साधर्म्य को वह पाया हुआ नहीं है। महाराज के साथ किसी का सीधा संबंध है ही नहीं और किया भी नहीं जा सकता। यह भी महाराज स्वयं जिस पर कृपा करें, उसे ही समझ आता है। जैसे कि पर्वतभाई, गोरधनभाई। अन्य सभी को–ब्रह्मरूप हुए बिना तो जब धाम में रहा नहीं जाता और महाराज की सेवा भी नहीं मिलती–तो मूर्ति का सुख, सत्ता, सामर्थ्य व आनंद पाया ही कहां से जाए? इस हेतु सर्वोत्कृष्ट पुरुषोत्तम के ही साक्षात् स्वरूप द्वारा ही साक्षात्कार की स्थिति करनी चाहिए जिससे माया से परे गति हो सके। जैसी भक्त की निष्ठा और भगवान के प्रत्यक्ष स्वरूप की महिमा-उतनी स्थिति ! वच.सा.10 के मुताबिक अतःदृष्टि से देखते हुए सभी धामों अणुमात्र भी दूर नहीं। तो, साक्षात् स्वरूपों तो हमें जरूर निर्वासनिक करके, दृष्टि व वृत्ति द्वारा भी हमारे स्वभाव बदलकर, ब्रह्मरूप र ही देंगे और महाराज में जोड़ देंगे।

प्रत्यक्ष नयनगोचर स्वरूप–प.पू. शास्त्रीजी महाराज तथा प.पू. योगीजी महाराज हमें महाभाग्य से पहचाने गये हैं व प्राप्त हुए हैं। तो वच.अं.–2 तथा वच. लोया.-7 व 12 के मुताबिक निर्विकल्प निश्चय दृढ़ करके निरुत्थान रूप से ही गुरुचरण में रहकर, उनके बारे जरा भी मनुष्यभाव न आने दें। सभी संतों को ब्रह्म की मूर्तियां ही समझकर मूल अक्षरब्रह्म अनादि स्वरूप-जिसमें महाराज सर्व प्रकार से अखंड रहे हैं व जो महाराज के ही स्वरूप सरीखे हैं, उनके आसरे रहकर दिव्य अलौकिक साक्षात्कार की स्थिति प्राप्त कर लें और महाराज की मूर्ति का अपार सुख देह रहते हुए ही अनुभव करें, भोगें और प्राप्त करें यही नम्र प्रार्थना गुरुहरिश्री को है। महाराज तथा पू. स्वामी गुणातीतानंदजी भी बादल देखकर निश्चय व स्थिति कराते थे और स्वरूप का साक्षात् ज्ञान तथा सामान्य रूप में विचरता दिव्य प्रत्यक्ष-मनुष्य रूप मूर्तिमान स्वरूप की महिमा समझाने ही विचरण करते थे। मंदिरों और उनके अधिष्ठाता देवों की मूर्तियां जब प्रधान हो गई व उनकी महिमा बढ़ गई, तब चौरासी करने के बाद महाराज नाखुश हो गये और (अमदावाद में) कांकरिया तालाब पर जाकर–'कुछ बना ही नहीं'–यूं कहने लगे। प्रत्यक्ष स्वरूप के कारण जो प्रवृत्ति हुई उसकी महिमा बन गई....और प्रत्यक्ष स्वरूप गौण हो गया जिससे की जो प्राप्ति होनी चाहिए थी वह नहीं हुई ! ऐसा अभी भी ना बने वह खास ध्यान रखना है। वचन में जरा भी अविश्वास हो तो वह मनुष्यभाव का ही भाव कहा जाए। सो, गुरुहरि के वचनों में जो शंका करे उसे वचनद्रोही-गुरुद्रोही और अज्ञानी में अतिशय अज्ञानी समझना। जिसे आसरा है, उसे महाराज का सच्चा ज्ञान-प्रगट पुरुषोत्तम का–संतों द्वारा अवश्य प्राप्त होगा। परन्तु फिलहाल तो यदि प्रयास करें तो जीवात्मा सहज में ही साक्षात्कार की स्थिति अनुभव कर सके, ऐसा संजोग है।

तो साक्षात् स्वरूप का ज्ञान और समग्र सत्ता से भरपूर व कर्ता-हर्ता प्रत्यक्ष मूर्ति की महिमा समझकर जीव में उतार लेना चाहिए। सत्संग दिव्य ही है। महाराज सदा दिव्य साकार रूप में सत्संग में मूर्तिमान विचर रहे हैं और संतों द्वारा प.पू. योगीजी महाराज की ही शरण में रहकर ऐसी अलौकिक स्थिति–धाम-धामी और मुक्तों के सनातन संबंध की प्राप्ति कर लेनी है व देह रहते हुए ही धाम का सुख अनुभव करके, भोग कर, अन्य भी समझ पाएं, यूं धर्मयुक्त रहकर गुणातीतज्ञान फैलाना है। इसी में स्वामिश्री जी तथा गुरुहरि की अपार प्रसन्नता ही प्रसन्नता है।

**प.पू. काकाजी महाराज**

मई, 1953

❑❑

# स्वामी की बातें

201. भगवान की जो पहले सेवा की थी, उसका फल देने के लिए महाराज हमें छोड़ गए हैं।
प्र–4,74

202. साधु का सेवन किया हो और निर्वासनिक हो, तब भी श्रीकृष्ण भगवान तथा पर्वत भाई एवं गोरधनभाई की तरह संतान तो होगी, परन्तु उन्हें विषय का चिंतन नहीं होता। वासनायुक्त हो और साधु का सेवन न किया हो, वह तो चाहे जंगल में आसन लगाकर बैठे, तो भी प्रीति तो गांव में ही लगी रहती है। वह चाहे कुछ त्याग भी करे, पर उसी का चिंतन रहेगा और जिसने साधु का सेवन किया हो, वह देह से भले क्रिया करता रहे, पर उसे विषय का चिंतन नहीं होगा। प्र–4,75

203. समागम के बिना कसर रह जाती है। कोई यदि बलवान हो तो वह गिर न जाये, परन्तु संग के बिना प्रगति को नहीं पा सकता। समागम के बिना वासना तो रहे, परन्तु हमारे स्वामी को हमारी चिंता है। वे किसी ऐसे बड़े का जोग देकर कसर टलवायेंगे। ये बातें अभी तो नहीं ख्याल पड़ती, पर आगे जाकर इसके बड़े वृक्ष होंगे। प्र–4,76

204. संग तीन प्रकार का है : उसमें–

1. जिसे विषय का संकल्प नहीं उठता हो, वह उत्तम।
2. वासना को दबाकर जो आज्ञा में रहे, वह मध्यम।
3. और जो आज्ञा नहीं पाले, वह कनिष्ठ।

प्र–4,77

205. एक को तो ऐसा आता है कि–प्रवृत्ति में तो रखें पर उसमें लिप्त न होने दे और दूसरा तो ऐसा डुबो रखे कि उसमें से कभी निकल ही ना पायें।....हम विषय छोड़ने को तैयार नहीं है, परन्तु हमें जो मिले हैं वे साधु हम में रहने दे, वैसे नहीं हैं। हमें तो इस साधु का काम है। वे मिले हैं सो किसी बात की फिकर नहीं है। प्र–4,80

206. सत्त्वगुणी को भगवान का निश्चय नहीं होता और तमोगुणी को भगवान का निश्चय होता है.....यूँ गुण का कोई मेल नहीं है। सो रजोगुण, तमोगुण व सत्त्वगुण–इन तीनों से परे गुणातीत होना, वह सही है। प्र–4,81

207. धन में से आसक्ति टल गई हो, वह धन कमाने के लिए लग नहीं पाएगा और वह चाहे व्यवहार करे भी, तो न किये जैसा ही करे। प्र–4,82

208. हमें भगवान में प्रीति है, पर ख्याल नहीं पड़ती।.....वह तो कोई हमारा सत्संग छुड़वाने आये तब लगाव का पता चले। प्र–4,83

209. .....सुखी रहना हो, उसे तो स्वयं की अपेक्षा जो दुःखी हों, उनका ख्याल करना, परन्तु स्वयं की अपेक्षा जो सुखी हों, उनकी ओर नहीं देखना, क्योंकि सुख तो प्रारब्ध के अनुसार मिला है। प्र–4,84

210. महाराज ने अनेक प्रकार के साधन, नियम बताये हैं, उसमें मुख्य ब्रह्मचर्य है। महाराज का अवतार तो मूल अज्ञान का नाश करने के लिए हुआ है।....वह मूल अज्ञान क्या? तो–स्वयं के स्वरूप की तीन देह से भिन्न समझ कर भक्ति न करे–यही मूल अज्ञान है। यह बात करोड़ जन्म धरने पर भी समझ में नहीं आयेगी। बड़े साधु समझायेंगे, तब समझ में आयेगी। प्र–4,85

☆☆

## व्रतोत्सवसूची

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. | दि. | 10.7.92 | शुक्रवार | देवशयनी एकादशी, निर्जला व्रत, चातुर्मास प्रारंभ |
| 2. | दि. | 14.7.92 | मंगलवार | आषाढ़ी पूर्णिमा, व्यास पूजा, गुरुपूर्णिमा। |

# गुरुपूर्णिमा उत्सव

14 जुलाई, मंगलवार को
गुरुपूर्णिमा का परम पवित्र पर्व आ रहा है।
गुरुपूर्णिमा अर्थात् गुरुपूजन करके गुरु और शिष्य के
संबंध की गाढ़ दृढ़ता.....आशीर्वाद प्राप्त करने का
महामंगलकारी दिन !

आईये,
इस महामंगलकारी दिन सायं 7.00 से 9.00
अशोकविहार मंदिर में सपरिवार–मित्रमंडल सहित
हम सब इकट्ठे होकर
सत्संग-भजन, कीर्तन, प्रसाद का लाभ लें
और
गुणातीत स्वरूपों के साथ हमारा संबंध
दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहे
इस संकल्प के साथ
सच्चा आध्यात्मिक गुरुपूजन करके
गुरुभक्ति अदा करें।

**PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY**
A 103, Ashok Vihar-III, Swaminarayan Marg, Kakaji Lane,
Delhi-110 052. (India) Tel. : 7229327, 7249327
Printed at **Kamal Printers,** IX/5866, Gandhi Nagar, Delhi-110 031